UGC CARE LISTED
(Arts & Humanities)

ISSN : 2277-4351
RNI Reg:UTTMUL 2012/53882

DP-22

वैदिक वाग् ज्योतिः

Vaidika Vāg Jyotiḥ

An International Refereed/Peer-Reviewed Research Journal on Vedic Studies

(UGC Approved Half Yearly Journal)

Vol./वर्ष-11 July-December 2023 No./ अंक 21

सम्पादक
प्रो. दिनेशचन्द्र शास्त्री
अध्यक्षचर, वेदविभाग, गुरुकुलकांगड़ी (समविश्वविद्यालय)
कुलपति
उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय
हरिद्वार

गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार
(NAAC द्वारा 'ए' ग्रेड प्रदत्त एवं यू.जी.सी. द्वारा पूर्णतः अनुदानित समविश्वविद्यालय)
Gurukula Kangri (Deemed to be University)
Haridwar-249 404 (Uttarakhand) India
http://www.gkv.ac.in

Vol. 11
No. 21
DP-22
वैदिक वाग् ज्योतिः सम्पादक - दिनेशचन्द्र शास्त्री
UGC CARE LISTED

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 11, No. 21 (17-28) July-December 2023 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

21वीं शताब्दी में महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित अष्टाङ्ग योग का महत्त्व

सुमित सुहाग*

सारांश

21वीं सदी में आज हम अपने ही जीवन के घटना चक्र को देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी के जीवन का एक ही लक्ष्य है-सुख की प्राप्ति। हमारे सारे कार्यकलाप अधिक से अधिक सुख, सारे ही दुःखों का परिहार या संभव हो तो निराकरण से प्रेरित है। अधिक सुख पाने की प्रवृत्ति और दुःख, पीड़ा, संताप की निवृत्ति (दुःखनिवृत्तिः सुखप्राप्तिश्च) केंद्रीय विषय है। हम बेहतर नौकरी चाहते हैं, अधिक सुख-सुविधाएँ, इंद्रिय-सुख, नाम - यश, शक्ति, पद चाहते हैं और यह सभी कुछ केवल इसलिए कि अधिक से अधिक सुख पा सकें। जिसे प्राप्त करने में योग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि योग को अपने जीवन में उतारा जाए तो सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त किया सकता है। योग को दर्शन का रूप देने वाले महर्षि पतञ्जलि का योग मार्ग 'राजयोग' के नाम से प्रसिद्ध है, जिसे 'अष्टांग योग' भी कहा जाता है। इसी योग के मुख्य सिद्धांतों का संक्षिप्त वर्णन इस शोध पत्र में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तावना

योग आध्यात्मिक अनुशासन एवं अत्यन्त सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित वेदों से प्राप्त ऐसा सार्वकालिक, सार्वभौमिक और सार्वजनिक ज्ञान है, जो शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का सामञ्जस्य स्थापित करता है। वैदिक योग परम्परा के अनुसार योग का अभ्यास व्यक्तिगत चेतना को सार्वभौमिक चेतना के साथ एकाकार कर देता है। आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है वह परमाणु का प्रकटीकरण मात्र है। जिसने योग के माध्यम से इस अस्तित्व के एकत्व का अनुभव प्राप्त कर लिया है, उसे योगी कहा जाता है और योगी आत्म-साक्षात् करके मुक्तावस्था को प्राप्त कर लेता है। इसे ही मुक्ति, निर्वाण, कैवल्य या मोक्ष कहा जाता

* शोध छात्र

है। योग पर किये गये आधुनिक अनुसन्धानों से यह प्रमाणित हुआ है कि योग मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिये बहुत ही उपयोगी है। यह मानसिक चिन्ता, अवसाद, निराशा आदि को दूर करके शारीरिक रोग प्रतिरोधक क्षमता को आश्चर्यजनक रूप से बढाता है। योग अनेक प्रकार के असाध्य रोगों के उपचार में भी बहुत सहायक है।

योग शब्द की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा

महर्षि पाणिनि के अनुसार योग शब्द 'युज्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है। यह धातु महर्षि पाणिनि ने तीन अर्थों में प्रयुक्त की है- 'युज् समाधौ' = चित्त को स्थिर करके आत्मस्थ होकर समाधि की अवस्था को प्राप्त कर लेना, 'युजिर् योगे'=जुड़ना, मिलाप करना, एकत्र करना, 'युज् संयमने' = संयत करना, बान्धना, वश में करना। योग दर्शन के प्रथम व्याख्याकार महर्षि व्यास योग का अर्थ 'समाधि' करते हैं-

योगःसमाधिः स च सार्वभौमचित्तस्य धर्मः॥[1]

इस प्रकार योग दर्शन के सन्दर्भ में योग शब्द समाधि अर्थ वाली 'युज्' धातु से 'घञ्' लगाकर बनेगा। महर्षि पतञ्जलि योग को परिभाषित करते हुए कहते हैं-

योगश्चित्त-वृत्ति-निरोधः॥[2]

अर्थात् जब जीवात्मा अपने चित्त की वृत्तियों को रोक कर समाधिस्थ हो जाता है, तब अपने स्वरूप में स्थिर होकर परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है। समाधि की इस अवस्था को ही योग कहा जाता है।

अष्टाङ्गयोग का परिचय

महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित अष्टाङ्गयोग, योग के सभी मार्गों में सबसे अधिक प्रचलित व उपयोगी होने के कारण इसे सभी योग मार्गों में श्रेष्ठ माना जाता है। योग सूत्र के रचयिता महर्षि पतञ्जलि ने समाधि की प्राप्ति के उद्देश्य हेतु योग के आठ अंगों की रचना की जिससे इस योग का नाम अष्टाङ्गयोग विख्यात हुआ।

यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-
धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि॥[3]

अष्टाङ्गयोग के अन्तर्गत परिगणित योग के आठ अङ्ग निम्नलिखित हैं:-

---

1. योग दर्शन 1.1 व्यास भाष्य
2. योग दर्शन 2.2
3. योग दर्शन 2.29

(1) यम (2) नियम (3) आसन (4) प्राणायाम (5) प्रत्याहार (6) धारणा (7) ध्यान (8) समाधि। इनमें प्रथम पाँच अङ्गों को बहिरङ्ग योग कहा जाता है और अन्तिम तीन अङ्गों को अन्तरङ्ग योग। आत्मा का शरीर एवं मन पर पूरा अधिकार होना चाहिए। अतः शरीर का मन और इन्द्रियों की शुद्धि हेतु अष्टांग योग में आठ अङ्गों का निर्देश किया गया है। जिनका वर्णन निम्नलिखित है:-

(क) अहिंसा (ख) सत्य (ग) अस्तेय (घ) ब्रह्मचर्य (ङ) अपरिग्रह ये यम के पाँच भेद हैं: -

अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रहा यमाः।।[1]

1. यम-यम अष्टाङ्ग योग का प्रथम अङ्ग है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार-

(क) अहिंसा:- अपने विचारों, शब्दों या कार्यों के माध्यम से कभी भी किसी भी प्राणी को पीड़ा न देना ही अहिंसा है। इसके अभ्यास से भाईचारे और प्रेम की भावना पैदा होती है, जो मन को शुद्ध करती है। अहिंसा का एक घटक द्वेष की भावना का बहिष्कार भी है। किसी के प्रति, शत्रुता का भाव रखना, अनिष्ट विचारना, बदले की भावना से हानि पहुँचाने का विचार करना 'मानसिक हिंसा' है। अहिंसा के माध्यम से मानसिक और भावनात्मक शुद्धता प्राप्त करने का एकमात्र तरीका है। हिंसा की उत्पत्ति-क्रोध, भय, लोभ, मोह, अज्ञान और दुर्बलता से होती है। योग दर्शन में हिंसा के 81 भेद बताये गये हैं:-

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका
मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्।।[2]

(1) कृत -स्वयं की हुई (2) कारित-दूसरों से कराई गयी (3) अनुमोदित-दूसरों द्वारा की गयी हिंसा का मन अथवा वचन से समर्थन करना।

अहिंसा का फल - महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में उल्लेख किया कि-

'अहिंसा-प्रतिष्ठायां-तत् सन्निधौ वैरत्यागः।।[3]

अर्थात् हृदय में अहिंसा के प्रतिष्ठित होने पर अहिंसक के समीप सांप, बाघ आदि हिंसक प्राणी भी वैरभाव का परित्याग कर देते हैं। अहिंसा की सिद्धि के बिना अन्य यमों की सिद्धि नहीं हो सकती, इसलिए यमों में इसे सर्वप्रथम स्थान दिया गया है।

---

1. योग दर्शन 2.30
2. योग दर्शन 2.34
3. योग दर्शन 2.35

(ख) सत्य :-

सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे॥[1]

अर्थात् मनस् एवं वचन की एकरूपता सत्य है। प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम के द्वारा कोई भी पदार्थ जिस प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमित अथवा स्रोत हुआ हो, दूसरे को उसका उसी रूप में बोध कराना सत्य है। शास्त्रों में विधान है कि-

यथा दृष्टं यथानुमितं यथा श्रुतं तथा वाङ्मनश्चेति। परत्र स्वबोधसंक्रान्तये वागुक्ता, सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्तिवन्ध्या वा भवेदिति। एषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न भूतोपघाताय। यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघातपरैव स्यान्न सत्यं भवेत्, पापमेव भवेत्। तेन पुण्याभासेन पुण्यप्रकृतिरूपकेण कष्टं तमः प्राप्नुयात्। तस्मात्परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं

ब्रूयात्॥[2]

अर्थात् सत्य बोलने का उद्देश्य प्राणिमात्र की भलाई होना चाहिए। यदि सत्य बोलने से किसी निरपराध प्राणि की हानि होती है तो वह पाप है, सत्य नहीं। "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" सत्य वचन ऐसा हो जो प्रिय हो, कड़वा सत्य न बोलें। अन्धे को अन्धा कहना कड़वा सत्य है। इससे बोलने वाले का कोई लाभ नहीं होता, परन्तु अन्धे व्यक्ति को कष्ट अवश्य होता है। सत्य प्रकट करने का उद्देश्य भी सामजिक और राष्ट्रीय हित होना चाहिए, हानि नहीं।

सत्य का फल -

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्॥[3]

अर्थात् सत्य में प्रतिष्ठित होने पर व्यक्ति वाक्सिद्ध हो जाता है। सत्य के महत्त्व को समझकर जीवन में सत्य को धारण करो। सत्य में निवास करो। सत्य में मूर्तरूप बन जाओ। मन, वाणी और कर्म से सच्चे रहो।

(ग) अस्तेयः- अस्तेय का अभ्यास केवल वही साधक कर सकता है जो अहिंसक और सत्यवादी हो। इस कारण अस्तेय का यमांगों में तीसरा स्थान है। स्तेय का अर्थ है- चोरी, न स्तेय = अस्तेय अर्थात् चोरी न करना। मन, वचन और कर्म से दूसरों के धन, वस्तु या विचारों का अपने हित में प्रयोग की प्रवृति से विरत होना। अस्तेय से व्यक्तिगत चित्तशुद्धि के अतिरिक्त व्यापक सामाजिक तनाव भी कम होता

---

1. योग दर्शन 2.30 व्यास भाष्य
2. योग दर्शन 2.30 व्यास भाष्य
3. योग दर्शन 2.36

है। रिश्वत लेना, बिना परिश्रम के छल-कपट से धन प्राप्त करना, अपने कर्त्तव्य में लापरवाही करना, आदि चोरी के ही भेद हैं।

अस्तेय का फल-

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।।[1]

अर्थात् मनुष्य के हृदय में अस्तेय की प्रतिष्ठा हो जाने पर उसके सामने संसार के सब रत्न स्वयमेव उपस्थित हो जाते हैं अर्थात् अस्तेय में प्रतिष्ठित व्यक्ति को कभी धन-रत्न का अभाव नहीं रहता।

(घ) ब्रह्मचर्य :-

ब्रह्मचर्यम् गुप्तन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः।।[2]

अर्थात् काम वासना से मुक्त होकर जननेन्द्रिय का संयम करके वीर्य की रक्षा करना 'ब्रह्मचर्य' है। यह साधक को सामाजिक और भौतिक दृष्टिकोण से मजबूत रखता है तथा उसके मन और शरीर को शुद्ध करता है ताकि वह साधना के मार्ग पर प्रभावी ढंग से आगे बढ़ सके।

ब्रह्मचर्य का फल-

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।।[3]

अर्थात् जब व्यक्ति मन, वचन एवं कर्म से संयम पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करता है तब उसे शारीरिक एवं बौद्धिक बल की प्राप्ति होती है। शरीर का बल बढ़ने से वह निरोगी और दीर्घायु होता है। बुद्धि का बल बढ़ने से वह गम्भीर विषयों को आसानी से समझ लेता है।

(ङ) अपरिग्रहः-

परि = चारों ओर से ग्रह = ग्रहण करना। अर्थात् चारों ओर से ग्रहण करना 'परिग्रह' होता है और उसको छोड़ देना 'अपरिग्रह' होता है। योग दर्शन में अपरिग्रह की व्याख्या करते हुए महर्षि व्यास ने उल्लेख किया है कि-

विषयाणाम् अर्जन-रक्षण-क्षय-सङ्ग-
हिंसा-दर्शनाद्-अस्वीकरणम् अपरिग्रहः।।[4]

---

1. योग दर्शन 2.37
2. योग दर्शन 2.38 व्यास भाष्य
3. योग दर्शन 2.38
4. योग दर्शन 2.30 व्यास भाष्य

अर्थात् विषयों में उपार्जन, रक्षण, क्षय, हिंसा, दोष देखकर विषय भोग की दृष्टि से उनका संग्रह न करना, 'अपरिग्रह' है।

अपरिग्रह का फल-

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः।।[1]

अर्थात् अपरिग्रह में दृढ़ता होने पर पूर्वजन्म के कारणों का बोध होता है।

2. नियम- नियम अष्टाङ्ग योग का द्वितीय अंग है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार -

शौच-सन्तोष-तपः स्वाध्याय-ईश्वर-प्रणिधानानि नियमाः।।[2]

(क) शौच (ख) सन्तोष (ग) तप (घ) स्वाध्याय और (ङ) ईश्वर प्रणिधान नियम भी पाँच हैं। इनका पालन व्यक्तिगत जीवन के लिए आवश्यक है।

(क) शौच :- शौच का तात्पर्य तन और मन की शुद्धि करना है। शरीर, वस्त्र, वातावरण आदि से अशुद्धियों को दूर करने को बाह्य शुद्धि कहते हैं। जप, तपस्या और शुद्ध विचारों के साथ-साथ मित्रता की भावना आदि के माध्यम से राग, द्वेष आदि का हृदय से परित्याग आभ्यन्तर शुद्धि कहलाता है।

शौच का फल-

शौचत्स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः।।[3]

अर्थात् जब योगी की बाह्य तथा आंतरिक शुद्धि हो जाती है, तब वह अपने शरीर से अनासक्त हो जाता है तथा अन्यों के शरीरों से भी आसक्तिरहित हो जाता है।

सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्रयेन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च।।[4]

अर्थात् शौच से बुद्धि की शुद्धि, मन की प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियों पर नियंत्रण तथा आत्मा व परमात्मा को जानने की योग्यता प्राप्त होती है ।

(ख) सन्तोष :-

सन्तोषः संनिहित-साधनादधिकस्यानुपादित्सा।।[5]

---

1. योग दर्शन 2.39
2. योग दर्शन 2.32
3. योग दर्शन 2.40
4. योग दर्शन 2.41
5. योग दर्शन 2.32 व्यास भाष्य

सन्तोष से अभिप्राय: यह है कि उचित मार्ग पर चलते हुए पूर्ण पुरुषार्थ के बाद प्राप्त साधनों से अधिक ग्रहण करने की इच्छा न करना "सन्तोष" कहलाता है।

सन्तोष का फल -

सन्तोषदनुत्तमः सुखलाभः॥[1]

अर्थात् संतोष से अनुत्तम सुख लाभ होता है। अनुत्तम का अर्थ होता है, जिससे बढ़कर कुछ भी न हो। यानी संतोष के सिद्ध हो जाने पर परमसुख मिलता है।

तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणीधान -नियम के अंतिम तपसादि तीन भेद द्वितीय पाद के प्रथम सत्र में क्रियायोग शब्द से परिभाषित है। जिनका वर्णन निम्नलिखित है-

(ग) तपः-

तपो द्वन्द्वसहनम्। द्वन्द्वश्च जिघित्सापिपासे, शीतोष्णे...॥[2]

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान, सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्वों को सहन करना 'तप' कहलाता है।

तप का फल-

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः॥[3]

तप के अनुष्ठान से वात, पित्त, कफ की विषमता से उत्पन्न विकार नष्ट होते हैं। शरीर स्वस्थ, बलवान्, स्वच्छ और स्फूर्तिमान् होता है तथा इन्द्रियों में विषयों को दूर से देखने, सुनने आदि का सामर्थ्य बढ़ जाता है।

(घ) स्वाध्यायः -

स्वाध्यायो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं प्रणवजपो वा॥[4]

महर्षि व्यास के अनुसार मोक्ष का उपदेश करने वाले शास्त्रों का अध्ययन तथा प्रणव=ओङ्कम् का जप करना 'स्वाध्याय' कहलाता है। स्वाध्याय शब्द का अर्थ है - स्व+अध्याय = अपने आपका अध्ययन करना। अर्थात् उत्तम ग्रन्थों जैसे-वेद, वेदाङ्ग, उपाङ्ग, उपवेद, उपनिषद्, दर्शन, गीता आदि का अध्ययन करके अपने अन्तःकरण एवं सूक्ष्म शरीर को समझकर आत्म साक्षात्कार करने के लिए प्रयत्न करना। वैदिक

1. योग दर्शन 2.42
2. योग दर्शन 2.32 व्यास भाष्य
3. योग दर्शन 2.43
4. योग दर्शन 2.32 व्यास भाष्य

ग्रंथों का अध्ययन साधक को ध्यान केन्द्रित करने में और जीवन की कठिन समस्याओं को सुलझाने में समर्थ बनाता है।

स्वाध्याय का फल -

स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः।।[1]

देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य
दर्शनं गच्छन्ति कार्ये चास्य वर्तन्त इति।।[2]

स्वाध्याय करने वाले को ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है। योगियों, वैदिक विद्वानों आदि धार्मिक पुरुषों के साथ सम्पर्क हो जाता है और उनसे उत्तम कार्यों में सहायता प्राप्त होती है।

(ङ) ईश्वर प्रणिधानः-

ईश्वरप्रणिधानं तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्।।[3]

अर्थात् पूर्ण समर्पण भाव से ईश्वर की भक्ति करना, लौकिक फलों की कामना से रहित होकर आत्म साक्षात्कार एवं ईश्वर साक्षात्कार को ही लक्ष्य में रखकर कर्त्तव्य कर्म करते हुए ईश्वर के प्रति समर्पण भाव रखना, ईश्वर प्रणिधान है।

ईश्वर प्रणिधान का फल -

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।।[4]

अर्थात् ईश्वर प्रणिधान से परमात्मा का साक्षात्कार, जीवात्मा का साक्षात्कार और विघ्नों का विनाश होता है।

3. आसन -

स्थिरसुखमासनम्।।[5]

अर्थात् ध्यान करते समय जिस अवस्था में सुखपूर्वक बैठा जा सके वह 'आसन' कहलाता है। आसन दो प्रकार के होते हैं। प्रथम ईश्वर का ध्यान करते समय दीर्घ काल तक सुख पूर्वक एक स्थिति में बैठे रहने के लिए होता है। जैसे-

---

1. योग दर्शन 2.44
2. योग दर्शन 2.44 व्यास भाष्य
3. योग दर्शन 2.32 व्यास भाष्य
4. योग दर्शन 1.29
5. योग दर्शन 2.46

पद्मासन, सिद्धासन आदि। दूसरे प्रकार के आसनों का प्रयोग शरीर को स्वस्थ रखने के लिए व्यायाम के रूप में किया जाता है- हलासन, शीर्षासन, मत्स्येन्द्रासन सर्वाङ्गासन, कोणासन, ओङ्कारासन आदि। आसन की सिद्धि के दो उपाय हैं:-

प्रयत्नशैथिल्यानन्त-समापत्तिभ्याम्।।[1]

प्रयत्न शैथिल्य=समस्त शारीरिक चेष्टाओं को रोक देना, अनन्त समापत्ति = और अनन्त ईश्वर में ध्यान लगाना।

आसन सिद्धि का फल-

ततो द्वन्द्वानभिघातः।।[2]

अर्थात् आसन सिद्ध हो जाने पर सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि द्वन्द्वों को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। जिस कारण योगी दुःखी नहीं होता।

4. प्राणायाम -

तस्मिन्सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।।[3]

अर्थात् आसन की सिद्धि होने पर श्वास प्रश्वास की गति को रोक देना प्राणायाम कहलाता है। यह प्राणायाम चार प्रकार से होता है।

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः।।[4]

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः।।[5]

पहला बाह्य विषय, दूसरा आभ्यन्तर विषय, तीसरा स्तम्भवृत्ति और चौथा जो बाहर-भीतर रोकने से होता है।

प्राणायाम की विधि- उपर्युक्त चार प्रकार के प्राणायाम की विधियाँ निम्नलिखित हैं-

भीतर से बाहर को श्वास निकले तब उसको बाहर ही रोक दे, इसे बाह्य प्राणायाम कहते हैं। जब बाहर से भीतर को श्वास आवे, तब उसको जितना रोक सके उतना भीतर ही रोक दें, इसको आभ्यन्तर प्राणायाम कहते हैं। तीसरा स्तम्भवृत्ति प्राणायाम है कि न प्राण को बाहर निकाले और न बाहर से भीतर ले जाये किन्तु

---

1. योग दर्शन 2.47
2. योग दर्शन 2.48
3. योग दर्शन 2.49
4. योग दर्शन 2.50
5. योग दर्शन 2.51

जितनी देर सुख से रोक सके, उसको जहाँ का तहाँ, ज्यों का त्यों एकदम रोक दे। और चौथा यह है कि जब श्वास भीतर से बाहर को आवे तब बाहर ही कुछ-कुछ रोकता रहे और जब बाहर से भीतर जावे, तब उसको भी थोड़ा-थोड़ा रोकता रहे, इसको बाह्याभ्यन्तराक्षेपी कहते हैं।

प्राणायाम का फल-

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्॥[1]

तदस्य प्रकाशावरणं कर्म संसारनिबन्धनं
प्राणायामाभ्यासाद् दुर्बलं भवति प्रतिक्षणं च क्षीयते॥[2]

प्राणायाम का निरन्तर अभ्यास करने से विवेक ज्ञान को ढकने वाला अज्ञान क्षीण हो जाता है। इसमें अशुभ संस्कार और भावी अशुभ कर्म क्षीण हो जाते हैं।

धारणासु च योग्यता मनसः॥[3]

इसके अतिरिक्त प्राणायाम करने से मन में एकाग्रचित होने की सामर्थ्य आ जाती है। योगाभ्यासी जहाँ कहीं भी मन को रोकना चाहे वहां रोकने में समर्थ हो जाता है।

5. प्रत्याहार

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्यस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः॥[4]

उपर्युक्त प्रकार से योग साधन करते-करते जब साधक का मन निर्मल होकर शान्त हो जाता है तब उसकी इन्द्रियों का व्यापार स्वत: रुक जाता है। क्योंकि इन्द्रियाँ मन की प्रेरणा से अपने-अपने विषयों की ओर भाग रही थी, जब मन शान्त होकर स्थिर हो गया तो इन्द्रियों का व्यापर स्वत: ही रुक गया और वे मन के अनुकूल होकर शान्त हो गयी। इस प्रकार इन्द्रियों का विषयों से हटकर मन के अनुकूल होना 'प्रत्याहार' कहलाता है।

प्रत्याहार का फल-

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्॥[5]

अर्थात् प्रत्याहार के सिद्ध होने पर इन्द्रियाँ पूर्ण रूप से वश में हो जाती हैं।

---

1. योग दर्शन 2.52
2. योग दर्शन 2.52 व्यास भाष्य
3. योग दर्शन 2.53
4. योग दर्शन 2.54
5. योग दर्शन 2.55

फिर किसी अन्य उपाय की इन्द्रियों को वश में करने के लिए आवश्यकता नहीं रहती।

योग के अन्तरङ्ग साधन

धारणा, ध्यान और समाधि-

त्र्यमेकत्र संयमः॥[1]

योग दर्शन में धारणा, ध्यान और समाधि को 'संयम' कहा गया है।

6. धारणा-

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा॥[2]

जब बहिरङ्ग साधनों से मन निर्मल एवं शान्त हो जाता है तब मन को अपनी इच्छानुसार किसी एक स्थान पर स्थिर करना 'धारणा' कहलाती है। भाव यह है कि- साधक जब अपनी इच्छानुसार मन को जिस स्थान पर स्थिर करना चाहता है, वहाँ स्थिर कर लेता है। यह स्थिति धारणा है। साधक जब अपने अङ्गों- हृदय, आज्ञाचक्र, नाभि आदि पर मन को स्थिर करके ईश्वर का ध्यान करना धारणा का आन्तरिक स्थान है। जब कोई व्यक्ति किसी सांसारिक पदार्थ के स्वरूप को जानने के लिए अपने मन को उस पदार्थ के किसी भाग पर स्थिर करता है, यह धारणा का बाह्य स्थान है।

7. ध्यान-

तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्॥[3]

नाभि, आज्ञा चक्र आदि जिस स्थान पर मन को स्थिर करके ईश्वर का ध्यान धारणा की स्थिति में किया जा रहा है, वह निरन्तर बना रहे, उसके अतिरिक्त कुछ भी विचार या ज्ञान न हो। इस अवस्था को 'ध्यान' कहते हैं।

8. समाधि-

ध्यान की अन्तिम अवस्था समाधि है।

तदेव-अर्थमात्र-निर्भासं स्वरूप-शून्यमिव समाधिः॥[4]

जब जीवात्मा ध्यान के द्वारा पूर्ण रूप से ईश्वर के स्वरूप को जान लेता है और मन को समस्त सांसारिक विषयों से हटाकर ईश्वर के स्वरूप में ही स्थिर कर

---

1. योग दर्शन 3.4
2. योग दर्शन 3.1
3. योग दर्शन 3.2
4. योग दर्शन 3.3

लेता है, इसी का नाम समाधि है। समाधि में ईश्वर के ध्यान में लीन आत्मा अपने आपको भूल सा जाता है। पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त योग साधना श्रद्धापूर्वक नियमित रूप से दीर्घकाल तक उचित आहार, विहार और नियमित दिनचर्या का पालन करते हुए की जाए तो आसानी से सफलता मिल जाती है। अतः योगेश्वर भगवान् श्री कृष्ण जी कहते हैं-

युक्ताहर-विहारस्य युक्त-चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त-स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।[1]

अर्थात् जिसका आहार-विहार नियमित हो, जिसकी कर्म चेष्टायें नियमित हों, जिसका सोना और जागना नियमित हो, योग उसके दुःख दूर कर देता है।

निष्कर्ष

अष्टांग योग खुद को खोजने और स्वयं को अधिक बेहतर बनाने में मदद करता है। योग का अभ्यास शुरु करने का एक शानदार तरीका अष्टांग योग है। अष्टांग योग का अभ्यास कोई भी कर सकता है और इसे नियमित रूप से करने के कई फायदे हैं। अनेकों शोध पत्रों के अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि यम, नियम के पालन का सकारात्मक मनोवैज्ञानिक असर देखने को मिलता है। आसन हमारे शरीर की स्थिति में सुधार लाते हैं तथा तनाव को कम करने में सहायक होते हैं। प्राणायाम मन को शांत करने में भी मदद करता हैं तथा प्राणायाम की श्वसन क्रिया फेफडों को शक्तिशाली बनाकर उनके लचीलेपन को बढाती है। जिसके कारण सम्पूर्ण शरीर में प्राण वायु (ऑक्सीजन) का अधिक से अधिक संचरण होता है। जिनके परिणाम स्वरूप स्मरण शक्ति तीव्र होती है तथा मस्तिक के विकार दूर होते हैं। ध्यान के नियमित अभ्यास से शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत बनती है, तंत्रिका तंत्र मजबूत होता है। वृद्धावस्था में रुकावट तथा शरीर के अंगो व सिस्टम सुचारू रूप से कार्यशील होते हैं। साधक अष्टांग योग के सोपानों की सीढ़ी चढ़ता हुआ समाधि में प्रवेश कर कैवल्य की स्थिति पर पहुंच जाता है। यही आध्यात्मिक विकास कहा जा सकता है। पतञ्जलि मुनि ने अपने योग दर्शन में अष्ट सिद्धियों का वर्णन किया है, जिसको प्राप्त करने से आध्यात्मिक विकास के साथ साथ व्यक्तित्व में भी निखार आता है। अष्टांग योग के निरन्तर अभ्यास के द्वारा योगियों को कुछ असाधारण शक्तियां प्राप्त होती हैं। ये शक्तियां ही सिद्धियां हैं, जिनका उचित प्रयोग योगी मोक्ष प्राप्त करने में करते हैं।

✦✦✦

1. गीता 6.17